दैनिक भास्कर

Date: 04-02-17

नगालैंड में स्वायत्तता व महिला अधिकार के बीच टकराव

नगालैंड में स्थानीय निकायों के चुनाव में भड़की हिंसा संविधान में आदिवासी इलाकों को दी गई स्वायतत्ता और समाज सुधार के सरकारी प्रयास के बीच द्वंद्व है। इसलिए इस मुद्दे को महज राजनीतिक कहकर नहीं टाल सकते। नगालैंड में महिलाएं लंबे समय से स्थानीय निकायों में आरक्षण की मांग कर रही हैं। अब जब दिसंबर 2016 में नगालैंड पीपुल्स फ्रंट और भाजपा की गठबंधन की सरकार के मुख्यमंत्री टीआर जिलियांग ने महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय लिया तो आदिवासी समाज का पारम्परिक संगठन भड़क उठा।

उसका कहना है कि अनुच्छेद 234 (टी) के तहत दिया गया यह आरक्षण पूर्वोत्तर के आदिवासी क्षेत्र नगालैंड को संविधान के अनुच्छेद 371 (ए) के तहत दिए गए विशेषाधिकार का उल्लंघन है। पूर्वोत्तर के ये इलाके संविधान की छठी अनुसूची में आते हैं जहां पर राज्यपाल की मंजूरी के बिना केंद्र और राज्य सरकार का कोई कानून लागू नहीं किया जा सकता। इसके अलावा 371 (ए) आदिवासियों को अपनी परम्परा और रीति-रिवाज की हिफाजत का भी अधिकार देता है।अब उनके कौन से अधिकार पारम्परिक हैं और कौन से रीति-रिवाज पुराने हैं, इसका फैसला वहां रह रही 18 आदिवासी जातियों के संगठन मिल-जुलकर करते हैं। मुख्यमंत्री टीआर जिलियांग कह रहे हैं कि स्थानीय निकायों का गठन आधुनिक है, इसलिए उन्हें आदिवासियों की परम्परा और प्रथा के दायरे में नहीं ला सकते। लेकिन नगालैंड के पारम्परिक आदिवासी संगठन को यह आरक्षण स्वीकार नहीं है और इसके विरोध में उन्होंने कोहिमा में नगर पालिका का दफ्तर फूंका और मुख्यमंत्री आवास पर भी हमला किया।विरोध का आलम यह है कि 1 फरवरी का चुनाव बारह घंटे के बंद के दौरान किया गया। इस समय पूर्वोत्तर का आदिवासी समाज ही नहीं भारत के अन्य समाज भी अजीब से द्वंद्व में उलझे हुए हैं। एक तरफ उनकी महिलाएं अपना अधिकार मांग रही हैं तो दूसरी तरफ उनकी जातीय पंचायतें अपने पारम्परिक हक के नाम पर उन्हें वह देने से इनकार कर रही हैं। हमारा संविधान विशेषाधिकार और सामाजिक क्रांति के बीच उलझ गया है। उससे एक समझदारी भरा रास्ता निकालने के लिए गहरे राजनीतिक विवेक की जरूरत है और शायद उसे दर्शाने में राजनेता नाकाम रहे हैं। यही वजह है कि आज नगालैंड जल रहा है।

दैनिक जागरण

Date: 04-02-17

राजनीति पर पूंजीपतियों का कब्जा और बढ़ाएंगे चुनावी बॉन्ड

वित्त मंत्री अरुण जेटली ने अपने बजट भाषण में इलेक्टोरल बॉन्ड जारी करने का एक अद्भुत प्रस्ताव रखा है। जो लोग नकदी राजनीतिक चंदे की मात्रा 20 हजार रुपये से घटाकर 2000 रुपये कर दिए जाने पर बल्लियों उछल रहे हैं, उन्हें इस बॉन्ड वाले प्रस्ताव के बारे में बात करते बिल्कुल ही नहीं सुना जा रहा है। लेकिन जेटली के प्रस्ताव से लग रहा है कि संदेहास्पद पैसों से चलने वाली भारतीय राजनीति आगे इसी रास्ते पर और ज्यादा महीन तरीके से चलने वाली है।

प्रस्ताव यह है कि रिजर्व बैंक के निर्देश पर सभी बैंक राजनीतिक पार्टियों के इस्तेमाल के लिए एक खास तरह का बॉन्ड जारी करेंगे, जिसे कोई भी व्यक्ति अपनी पहचान घोषित किए बगैर मनचाही मात्रा में खरीद सकेगा। कमोबेश गिफ्ट बॉन्ड जैसे इस फाइनैंशल इंस्ट्रुमंट को बैंक से खरीदने के बाद वह अपनी पसंद की पार्टी को सौंप देगा, जिसे वह पार्टी चुनाव आयोग को पहले से बताए गए अपने खाते में जमा करा सकेगी। इस बॉन्ड पर उसे नियमित ब्याज मिलता रहेगा और जरूरत पड़ने पर वह इसे पूरा का पूरा कैश भी करा सकेगी।वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में कहा कि भारत की सभी राजनीतिक पार्टियों की कुल आय का 70 फीसदी हिस्सा अघोषित स्रोतों से आता है। इस समस्या को दूर करने के लिए तत्काल कोई बड़ा कदम उठाना समय की मांग है। लेकिन जो उपाय उन्होंने सुझाया है और जिसे 1 अप्रैल 2018 तक अमल में उतार देने का वादा संसद और राष्ट्र से किया है- उसमें भी अघोषित स्रोतों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

वित्त मंत्री से जब इस गोपनीयता की वजह पूछी गई तो उन्होंने बताया कि राजनीतिक दलों को चंदा देने वाले लोग चेक और डिजिटल पेमेंट से बचना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें डर होता है कि उनकी पसंद वाली पार्टी अगर चुनाव हार गई और उसकी धुर विरोधी पार्टी जीत गई तो चंदे के जरिये सामने आई उनकी पहचान उनके लिए नुकसानदेह साबित होगी। चुनावी बॉन्ड्स का फायदा यह होगा कि इससे चंदे के बारे में जानकारी सिर्फ चंदा देने वाले व्यक्ति और उसे हासिल करने वाले राजनेता को ही हो पाएगी। बाकी लोग इससे हमेशा के लिए अनजान रहेंगे।सवाल यह है कि इससे क्या राजनीतिक भ्रष्टाचार को हद दर्जे का बढ़ावा नहीं मिलेगा? अभी लोग जानते हैं कि अडानी ग्रुप ने बीजेपी को और खासकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को भरपूर आर्थिक मदद पहुंचाई है। आगे कभी इस ग्रुप के धंधों की जांच हुई और पता चला कि रकम की किस खेप के बदले में उसे कौन सा फायदा पहुंचाया गया, तो इस आधार पर कभी न कभी पूंजीपति और राजनेता, दोनों के खिलाफ मुकदमा भी चलाया जा सकेगा। लेकिन इलेक्टोरल बॉन्ड का धंधा चल निकला, तब तो क्विड प्रो क्वो जैसा कोई आरोप कभी साबित ही नहीं किया जा सकेगा।कुछ समय पहले मायावती के खिलाफ आय से अधिक संपत्ति का मुकदमा दर्ज हुआ तो उन्होंने अदालत को बताया कि उनकी सारी व्यक्तिगत संपत्ति असल में उनकी पार्टी की संपत्ति है, जिसे उनके गरीब समर्थकों ने रुपया-दो रुपया चंदा देकर जमा किया है। बात रसीद दिखाने की हुई तो रातोंरात मोहरें मार कर लाखों रसीदें भी तैयार कर दी गईं, जिनमें कई पर दर्ज रकम 20 हजार रुपये की थी।

ऐसे चंदों की सीमा सीधे घटाकर 2000 रुपये कर दिए जाने से मायावती जैसे राजनेताओं को अदालत की मांग पर कभी भी ढेरों रसीदें छपाने की जरूरत पड़ सकती थी। जाहिर है, इलेक्टोरल बॉन्ड के जरिये अरुण जेटली अपनी नेता बिरादरी को इस समस्या से बचाने की कोशिश कर रहे हैं। अगर आप नेताओं के बीच से लगातार पैदा हो रहे करोड़पतियों की तादाद को देखकर हैरान हैं तो अपनी हैरानी बचाकर रखें। क्योंकि आने वाले दिनों में यह तादाद और भी तेजी से बढ़ने वाली है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 04-02-17

भारतीय सिनेमा के संप्रदायीकरण की कहीं यह शुरुआत तो नहीं?

दिल्ली के एक बेहद मामूली परिवार से ताल्लुक रखने वाले लड़के शाहरुख खान ने 1980 के दशक के अंत में थिएटर, टेलीविजन और फिल्मों में अपना हाथ आजमाया। दीवाना (1992) और बाजीगर (1993) फिल्मों में उनके काम को सराहा गया। लेकिन उन्हें असली पहचान मिली 1993 में आई यश चोपड़ा की फिल्म डर से। वह अमिताभ बच्चन और रजनीकांत के बाद भारत के सबसे बड़े सुपरस्टार बनकर उभरे। उनके प्रशंसक अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन और पोलैंड से लेकर दक्षिण अमेरिका, दक्षिणपूर्वी एशिया और मध्य एशिया तक फैले हैं। पिछले 20 सालों में भारतीय फिल्मों ने विदेशों में जितनी कमाई की है उसमें शाहरुख की फिल्मों का 50-60 फीसदी योगदान है। अमिताभ की तरह शाहरुख भी शिक्षित परिवार से आते हैं। वह चीजों की समझ रखते हैं और मजाकिया स्वभाव के हैं। उन्हें नियमित रूप से येल, आईआईएम और दूसरे प्रतिष्ठिïत संस्थानों में छात्रों के साथ रूबरू होने के लिए बुलाया जाता है। उनके भाषण यूट्यूब पर लोकप्रिय हैं। उनकी बातों में व्यावहारिकता और ज्ञान झलकता है जो भारत के लिए गर्व की बात है।

चोपड़ा ने शाहरुख को इसलिए नहीं चुना था कि वह मुस्लिम हैं। दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे इसलिए हिट नहीं हुई क्योंकि वह मुस्लिम हैं और न ही यह राम जाने जैसी फिल्म के फ्लॉप होने का कारण है। उनकी धार्मिक पहचान का कोई महत्त्व नहीं है- वह एक भारतीय सुपरस्टार हैं। इस बात के संकेत हैं कि शाहरुख का यह भारत बदल रहा है। पिछले सप्ताह फिल्म निर्माता संजय लीला भंसाली पर राजस्थान में फिल्म पद्मावती के सेट पर हमला हुआ। हमलावर इस बात को लेकर खफा थे कि इस फिल्म में एक मिथकीय भारतीय रानी और एक मुगल राजा के बीच कुछ आपत्तिजनक दृश्य हैं। इससे पहले 2016 में करण जौहर की फिल्म ऐ दिल है मुश्किल को रिलीज करने से इसलिए रोका गया क्योंकि इसमें एक पाकिस्तानी कलाकार था। इस तरह की घटनाओं से भारतीय सिनेमा की छवि को झटका लगा है। अनैतिक और अफवाहों से भरी सोशल मीडिया की दुनिया ने आग में घी का काम किया है। बयानों को तोड़मरोड़कर और फोटोशॉप के इस्तेमाल से बनाई गई तस्वीरों के जरिये हिंदी सिनेमा को बदनाम करने का कुत्सित प्रयास चल रहा है।

व्हॉट्सऐप ग्रुपों और फेसबुक पर लोग एकदूसरे को मुस्लिम कलाकारों की फिल्में नहीं देखने का आग्रह करते हैं। मेरे कई ऐसे भारतीय और प्रवासी दोस्त हैं जिन्होंने दंगल नहीं देखी। इसमें आमिर खान मुख्य भूमिका में थे जिन्होंने असहिष्णुता पर अपनी राय दी थी। सवाल यह है कि हम यहां तक कैसे पहुंचे? करीब 34 साल शायद ही कोई भारतीय इस बात पर माथापच्ची करता था कि फिल्म का नायक हिंदू है या मुसलमान। अमिताभ हिंदू होते हुए भी सभी भारतीयों के नायक हैं। कभी भी गैर हिन्दुओं ने उनकी फिल्मों के बहिष्कार के लिए अभियान नहीं चलाया। दिलीप कुमार (यूसुफ खान), राज कपूर, देवानंद, राजेंद्र कुमार, राजेश खन्ना के साथ भी ऐसा ही है। ये सभी सुपरस्टार रहे और उनके समर्थकों में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी और दूसरे सभी भारतीय शामिल थे। इन कलाकारों ने पर्दे पर ऐसे चरित्र निभाए जिनका संबंध सभी धर्मों से था। कुली (1983) में अमिताभ को इकबाल के रूप में और लगान (2001) में आमिर को भुवन के रूप में सभी भारतीयों का प्यार मिला। तो क्या हम दुनिया के सबसे प्रतिष्ठिïत फिल्म उद्योगों में से एक भारतीय सिनेमा के संप्रदायीकरण की शुरुआत देख रहे हैं?

भारत का सिनेमा देश की सॉफ्टपावर की पहचान है। इसे दुनियाभर में सराहना भी मिली है और इसने दूसरे देशों को व्याकुल भी किया है। मॉलिन रूज और द ग्रेट गेट्सबाई जैसे फिल्में बनाने वाले बाज लरमन सहित कई फिल्म निर्माता भारतीय सिनेमा की विशिष्टïा शैली से प्रभावित हैं। गैंग्स ऑफ वासेपुर, द लंचबॉक्स और मसान जैसी दर्जनों फिल्मों ने अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सवों में काफी धूम मचाई है। चीन में 3ईडियट्स की सफलता ने उस देश के लोगों को यह सोचने पर मजबूर किया कि वे कैसे अपनी सॉफ्टपावर को कैसे सुधारें। भारत उन चंद देशों में शामिल है जहां हॉलीवुड का दबदबा नहीं है बल्कि उसका अपना दमदार फिल्म उद्योग है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह समावेशी है और सभी के लिए खुला है। यह उन चंद पेशेवर स्थानों में है जहां भारतीयों को जाति, वर्ग और धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं झेलना पड़ता है। अगर फिल्म उद्योग में आपका कोई माईबाप नहीं है तो आपको प्रतिभा और संयम की जरूरत है। नवाजुद्दीन सिद्दीकी, विशाल भारद्वाज, दीपिका पादुकोण और कंगना रनौत से पूछिए।

सांप्रदायिकता की चिंता के खिलाफ दो तर्क हैं। पहला यह कि यह छोटे मोटे संगठनों की करतूत है और फिल्म निर्माताओं को अपनी रचनात्मक प्रतिबद्धता के लिए खड़े उठने की आदत डालनी होगी। दूसरा तर्क यह है कि भारतीय दर्शक धार्मिक पहचान के आधार पर फिल्म का चयन नहीं करते हैं। यही वजह है कि सरकारी उपेक्षा के बावजूद पिछले 100 वर्षों से यह उद्योग टिका हुआ है और एक साफसुथरा, संस्थागत रूप से वित्तपोषित सशक्त कारोबार बन चुका है। यही कारण है कि दंगल के खिलाफ ऑनलाइन अभियान के बावजूद यह फिल्म दुनियाभर में 600 करोड़ रुपये की कमाई करने के करीब पहुंच गई है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 03-02-17

गुमनाम नायकों का सम्मान

पहली बार सरकार ने इन प्रतिष्ठित पुरस्कारों के लिए आवेदन की प्रक्रिया को ऑनलाइन और पारदर्शी बनाया, और बहुत कई योग्य लोग सामने आए।किसी खास राजनीतिक विचारधारा की तरफ झुकाव को किनारे करके योग्य और मेधावी लोगों को राष्ट्रीय सम्मान या पुरस्कार देना किसी भी सरकार के कामकाज का हिस्सा होना चाहिए। मगर अतीत में हमने गणतंत्र दिवस से जुड़े सम्मानों व पुरस्कारों के राजनीतिकरण पर तमाम तरह के सवाल उठते देखे हैं। भला हो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का, जिन्होंने इन सम्मानों के लिए योग्यता को एकमात्र कसौटी बना दिया। वाकई, यह हर किसी के लिए भी गर्व का विषय है कि पद्म पुरस्कारों के 62 वर्षों के इतिहास में पहली बार एनडीए सरकार ने इन प्रतिष्ठित पुरस्कारों के लिए नॉमिनेशन यानी आवेदन देने की प्रक्रिया को ऑनलाइन और पारदर्शी बनाया। इसका अर्थ साफ था कि सिर्फ और सिर्फ योग्यता मायने रखती है; और कुछ नहीं।यह ऑनलाइन कवायद उस पुरानी व्यवस्था की भी विदाई थी, जिसमें राज्यों के मुख्यमंत्री, केंद्रीय मंत्रीगण, राज्य मंत्री, सांसद और पुरस्कार पाने वाले पुराने सम्मानीय लोग अपनी पसंद के लोगों को इन पुरस्कारों के लिए नामांकित करते थे। इस साल कोई ऑफलाइन नामांकन या सिफारिश नहीं ली गई। पूरी प्रक्रिया बिल्कुल पारदर्शी थी। इसका जो नतीजा निकला, वह हम सभी के सामने है। पुरस्कार पाने वाले 100 या ज्यादा लोगों की किसी सूची के विपरीत इस बार 89 जहीन लोगों की सूची बनी। इस सूची में कई ऐसे गुमनाम नायक भी हैं, जो नि:स्वार्थ भाव से अपने-अपने क्षेत्र में देश की सेवा कर रहे हैं, मगर उनके योगदान को बीते वर्षों में महत्व नहीं मिल सका। इन गुमनाम नायकों का सम्मान दरअसल, हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के इस मंत्र- रिफॉर्म, परफॉर्म ऐंड ट्रांसफॉर्म (सुधार करो, प्रदर्शन करो और कायांतरण करो) का ही एक और उदाहरण है।

यहां पर मुझे अमेरिकी लेखक और व्यंग्यकार मार्क ट्वेन की याद आ रही है। एक बार अपनी व्यंग्यात्मक शैली में उन्होंने ऐसे सम्मानों पर कटाक्ष करते हुए कहा था- 'कुल मिलाकर, अच्छा यही है कि आप सम्मान के योग्य हों और वह आपको नहीं मिले, बजाय इसके कि आप सम्मान के लायक न हों और तब भी वह आपको मिले।' वाकई मैं उन मूल्यों का स्वागत करता हूं, जो 2017 के पद्म पुरस्कारों के आधार बनें। और ये मूल्य थे- योग्यता, परिश्रम और सेवा की लगन। इस बार राष्ट्र-निर्माण में जमीनी स्तर पर काम करके अपना उत्कृष्ट योगदान देने वाले गुमनाम लोगों को सम्मान दिया गया। आप यह जानकर भी गौरवान्वित होंगे कि सर्जिकल स्ट्राइक के जांबाज भी वीरता पदक से नवाजे गए।

किस तरह की योग्यता को इस बार सम्मान मिला, इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं, दिव्यांग किसान गनाभाई दरगाभाई पटेल। इन्होंने सूखा प्रभावित बनासकांठा जिले को ड्रिप इरिगेशन (कम पानी और उर्वरक की खपत से सिंचाई का एक तरीका) की मदद से अनार-उत्पादन के मामले में धनी बना दिया है। अब बनासकांठा पश्चिम एशिया के देशों को अनार निर्यात कर रहा है, और गनाभाई 'अनार दादा' के रूप में लोकप्रिय हो चले हैं। ऐसी ही कहानी विजयवाड़ा के वी कोटेश्वरम्मा की है, जो साल 1955 से महिला सशक्तीकरण में जुटी हुई हैं, खासतौर पर बच्चियों को शिक्षित करने में। वह कई मोंटेसरी शैक्षिक संस्थानों की निदेशक भी हैं। 92 वर्षीया इस सुधारवादी महिला की उपलब्धियां ये भी हैं कि 1945 में इन्होंने स्नातक डिग्री हासिल की और ऐसा करने वाली वह विजयवाड़ा तालुका की पहली महिला थीं। इसी तरह, 1971 में वह राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार से भी नवाजी जा चुकी हैं। शिक्षित समाज को बनाने का इनका जुनून निश्चय ही हम सभी के लिए प्रेरक होना चाहिए।

बिपिन गणात्रा भी एक ऐसे ही शख्स हैं, जिन्होंने चुपचाप और अथक अपना काम किया है। कोलकाता के 59 वर्षीय इस अनौपचारिक 'अग्निरक्षक' ने आग से होने वाली दुर्घटनाओं से न जाने कितनी जिंदगियां बचाई हैं। अब तक 100 से ज्यादा घटनाओं में बचावकर्मी के रूप में वह अपनी सेवा दे चुके हैं। यहां डॉ. सुब्रतो दास को भी नहीं भुलाया जा सकता, जो सड़क हादसों के शिकार लोगों को तत्काल चिकित्सा-सुविधा मुहैया कराते हैं। उन्हें 'हाई-वे मसीहा' भी कहा जाता है। गुजरात के बड़ोदरा में उनका लाइफलाइन फाउंडेशन है, जो चार राज्यों में हाई-वे पर हादसों के शिकार लोगों को राहत पहुंचाता है। इसी तरह, तेलंगाना के 70 वर्षीय दरिपल्ली रमैया रोजाना बीज लगाते हैं। बीते चार दशकों में उन्होंने एक करोड़ से अधिक बीजारोपण किया है और तेलंगाना को हरा-भरा रखने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। तेलंगाना के ही चिंताकिंदी मल्लेशम भी पद्म पुरस्कार से नवाजे जाने वाले गुमनाम नायक हैं। उन्होंने एक ऐसी पोचमपल्ली सिल्क साड़ी-बुनाई मशीन ईजाद की है, जिससे कारीगरों की कठिन मेहनत और काम में लगने वाला पांच घंटे का वक्त घटकर डेढ़ घंटा हो गया है।

केरल की मीनाक्षी गुरुक्कल की कहानी भी किसी प्रेरणा से कम नहीं है। वह कलारीपयट्टू (केरल का एक पुराना मार्शल आर्ट) की सबसे उम्रदराज शिक्षिका हैं। वह पिछले 68 वर्षों में सैकड़ों लड़कियों और अन्य को आत्मरक्षा का नि:शुल्क प्रशिक्षण दे चुकी हैं। इसी तरह, पिछले छह दशकों से गरीबों की मुफ्त सेवा कर रहीं इंदौर की 91 वर्षीया स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉ. भक्ति यादव, 'इको-बाबा' के रूप में चर्चित और 165 किलोमीटर नाले का कायाकल्प करने वाले पर्यावरणविद बाबा बलवीर सिंह सीचेवाल, अध्यात्म के क्षेत्र में उत्कृष्ट काम करने वाले सद्गुरु जग्गी वासुदेव, 'बाइक-एंबुलेंस दादा' के रूप में प्रसिद्ध पश्चिम बंगाल के 50 वर्षीय करीमुल हक भी पद्म पुरस्कार पाने वाले बड़े नायक हैं।

यहां पर मैंने चंद नामों का ही जिक्र किया है। लेकिन इस बार के पद्म पुरस्कार पाने वालों में ऐसे कई अनकहे नायक हैं, जिनकी कहानियां बताती हैं कि यदि कड़ी मेहनत, लगन और उत्साह हो, तो अपने दम पर भी ऐसी उपलब्धियां हासिल की जा सकती हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी देश में व्यापक बदलाव को लेकर संकल्पित हैं। उनका यह प्रयास मात्र बदलाव के लिए नहीं है, बल्कि कई मामलों में सोच के स्तर पर परिवर्तन लाने को लेकर भी है। पद्म पुरस्कारों के लिए पारदर्शी व्यवस्था की शुरुआत एक ऐसा ही एक प्रयास है। उम्मीद है कि आम लोग इस सोच को बखूबी समझ सकेंगे।

THE HINDU

Date: 03-02-17

Neither transparent nor accountable

In the public mind, political corruption is the source of most forms of corruption. No doubt, Finance Minister Arun Jaitley was seeking to address this concern about the lack of transparency and accountability in the funding of political parties when he announced measures in the Union Budget to cleanse the process of making donations toward election expenses of parties. But his proposals are doomed to fail, not because they do not go far enough but because they go in the wrong direction. The ceiling of rs.2,000 on cash donation by any individual to a party, slashed from the existing rs.20,000, might inconvenience parties to some extent but is unlikely to stop the disguising of huge, off-the-books cash donations from corporate houses and vested interests as small contributions from ordinary party workers and sympathisers. All that the parties will now have to do is find more people to lend their names to these donations, or better still, find more names of unsuspecting people to be listed as cash donors. The proposal does not disrupt the flow of illicit political donations but only channels it differently, and will not reduce the proportion of cash from unverifiable sources in the total donations received. If Mr. Jaitley was indeed intent on getting the political class to truly account for their donations, he should have placed a cap on the amount a party may receive in cash as a donation. In any case, the declared income is only a small part of their funding, much of which is spent during elections and mobilisation efforts without coming under the radar of the Election Commission or the Income Tax Department.The proposal to allow donors to purchase electoral bonds from banks against cheque and digital payments to be given to registered political parties for redemption, meant to cater to donors' need to remain anonymous to rival political parties, hardly contributes to transparency. Indeed, donors should not enjoy any anonymity, before tax authorities or the general public. The absence of such anonymity, of course, will bring down the level of contributions from corporate houses and other entities to parties, not such a bad thing. Far from aiding transparency, the proposal only clouds the funding process. The Budget makes it mandatory for political parties to file returns within a time limit, but in the absence of extreme penal provisions compliance is likely to be low. Mr. Jaitley, while raising visions of a crackdown on illicit funding, seems to have left the issue untouched in real terms. Half-measures will not go even halfway in achieving the purpose of bringing about transparency and accountability in political donations.